पंचायत राज व्यवस्था : वैचारिक आधार
राजस्थान : एक विश्लेषण

डॉ. अरुण चतुर्वेदी

पंचायत राज व्यवस्था को नये संदर्भों में विश्लेषित करने की आवश्यकता वर्तमान में अधिक शक्तिशाली तरीके से उभर कर सामने आयी है, क्योंकि बदले हुए राजनीतिक संदर्भों में पंचायती राज व्यवस्था को स्थापित करने के प्रयास किये गये हैं। यों प्रयास यह भी रहा है कि आरंभिक प्रयोगों में जो कमियां उभर कर आयी हैं, उन्हें दूर करते हुए इस प्रयोग की व्यापक स्वीकृति को ही नहीं बढ़ाया जाए वरन् इस प्रयोग को आवश्यक राजनैतिक सहमति और स्वीकृति भी प्रदान कर दी जाए जिससे इसमें प्रयोग में आने वाली सामान्य परेशानियों को दूर किया जा सके। वैसे वर्तमान संदर्भ में यह आवश्यक है कि पंचायती राज से जुड़ी व्यवस्थाओं, विचार और उसमें राजनैतिक पक्षों से जुड़े विभिन्न प्रश्नों का एक सही आकलन हो, क्योंकि इसके अभाव में कई दृष्टियों और दृष्टिकोणों को समझने में कठिनाई महसूस होती है।

हम अपने विश्लेषण के बारे में एक बात स्पष्ट रूप से कहेंगे कि पंचायती राज के विश्लेषण में एक व्यापक दृष्टि की आवश्यकता है। यह नहीं हो सकता है कि पंचायती राज को केवल राजनीतिक, प्रशासकीय या एक स्थानीय प्रयोग की दृष्टि से ही विश्लेषित करके छोड़ दिया जाए। इस संदर्भ में यह दृष्टिकोण विशेष महत्वपूर्ण है कि इस प्रयोग का प्रभाव केवल राजनीतिक या प्रशासकीय अर्थों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इस प्रयोग के अर्थ और प्रयोग की वास्तविक क्षमताएं

बहुत अधिक हैं, वैसे यह प्रयोग व्यापक अर्थों में राजनैतिक सत्ता के प्रयोग को उसके मूल तक प्रभावित करता है और ऐसी स्थितियों में उसके सामाजिक राज्य सत्ता तक और आर्थिक बदलाव के अर्थों को समझने की आवश्यकता अधिक तेजी के साथ अनुभव की जा सकती है। यों राजनीतिक बदलाव के सामाजिक परिणामों पर एक बहुत व्यापक और प्रभावी विश्लेषण के क्रम में यह स्पष्ट किया गया कि पंचायती राज में नेतृत्व में बदलाव के परिणाम स्वरूप व्यापक संरचनाओं में अंतर आते हैं और उनके सही आकलन और सही विश्लेषणों की आवश्यकता है। वैसे पश्चिमी बंगाल में इस प्रयोग को समझने का उल्लेखनीय प्रयास किया गया है। इन स्थितियों में यदि हमारा आग्रह किसी भी एक पक्ष की ओर रहता है तो बदलाव की व्यापक प्रक्रियाओं को हम अनदेखा कर देंगे। ऐसी स्थिति में हमारा आग्रह यही रहे कि सामाजिक बदलाव के क्रम को राजनीति के अर्थों में और राजनीति के बदलावों को उनके सामाजिक, आर्थिक और अन्य व्यापक संदर्भों में रेखांकित करना ही उसके सही आकलन को प्रभावित करेगा। प्रस्तुत आलेख में इस दृष्टि से सैद्धान्तिक विश्लेषण, पंचायती राज की व्यवस्थाओं और बदलावों को समझने का प्रयास किया गया है।

वैसे हमारे इस विश्लेषण में अधिकांशतः संदर्भ राजस्थान से हैं जो इसलिये अधिक महत्वपूर्ण हैं कि राजस्थान उन राज्यों में से एक है जहां पंचायती राज संस्था का उसकी स्थापना के आरम्भिक वर्षों में अधिक महत्वपूर्ण कार्य हुआ है और राजस्थान में पंचायत राज के विश्लेषण का नियमित और उपयोगी कार्य लम्बे समय तक किया गया है इसलिये बदले हुए संदर्भों में भी राजस्थान की व्यवस्था, उसकी राजनीति और बदलावों में अध्ययन का आरम्भ अनुचित नहीं रहेगा।

वैचारिक आधार

पंचायत राज व्यवस्था में वैचारिक आधारों को गांधी के राजनीतिक चिन्तन से जोड़ा जाता है जिसमें प्रमुख विचार इस बात से जुड़ा है कि राजनीतिक सत्ता में केन्द्रीकरण से सत्ता में कई दोषों का आरम्भ होता है और व्यक्ति को जो प्रमुखता सत्ता की साझेदारी में मिलनी चाहिये वह प्राप्त नहीं होती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति की साझेदारी को बढ़ाने के लिये सत्ता के विकेन्द्रीकरण का मार्ग गांधी द्वारा सुझाया गया है।

गांधी के विचारों में गांवों में रहने वाले किसानों, उनके संस्कारों और समस्याओं की ओर बहुत अधिक गहरा लगाव था। उनके लेखन में जो चिन्ताएं रहीं उसके अनेक अंश दिये जा सकते हैं। 24 अक्टूबर 1939 को गांधी ने कांग्रेस विषय समिति में ग्राम उद्योग संघ पर प्रस्ताव के क्रम में बोलते हुए कहा, "इस साल जन. में हरि जन दौरा कर रहा था तब लोग मेरे पास आकर अपनी मुसीबतों को सुनाते थे... हमारे सात लाख गांवों में कुछ मार बीमारी का रहा। लोग खेती-पानी से किसी तरह अपनी जीविका चला पाते, पर लाखों लोगों को खेती में नुकसान पहुंचता है। आज तो किसान जितना बोते हैं उतना भी पैदा नहीं होता... जो लाखों करोड़ों का सोना देश से निकल गया है, उसके राजनैतिक कारण तो हैं ही पर एक कारण लोगों की यह लाचारी भी है..." ऐसे देश में गांधी ग्राम स्वरूप की परिकल्पना करते हैं। एक लेख में गांधी ने लिखा :–

"ग्राम स्वराज्य का मेरा विचार एक ऐसे सम्पूर्ण गणराज्य से है जो अपने पड़ोसी की निर्भरता से प्रमुख आवश्यकताओं के लिये स्वतंत्र होगा। गांव का पहला दायित्व होगा अपनी अन्न की फसल पैदा करना, अपने लिये कपड़े के लिये कपास पैदा करना, अपने जानवरों के लिये स्थान और वयस्कों और बच्चों के लिये खेल के मैदान। फिर भले जगह बच जाए तो पैसा देने वाली फसलें पैदा करना लेकिन गांजा, तम्बाकू और अफीम नहीं।"

गांव की आवश्यकताओं के लिये गांधी की सिफारिश थी "एक रंगशाला, स्कूल और सार्वजनिक घर की। उसकी अपनी जल व्यवस्था हो जिससे साफ पानी मिल सके जो कुओं और बावड़ी से प्राप्त हो सकता है। बुनियादी शिक्षा अनिवार्य हो। अधिक से अधिक गतिविधियां सहकारिता के द्वारा चलायी जाये।"

गांधी ने इस बात का उल्लेख किया कि अहिंसा, सत्याग्रह और सहयोग के साथ वह शक्ति होगी जिसके आधार पर गांवों में कार्य होगा। गांधी के अनुसार गांवों की सरकार का संचालन क्या पांच लोगों की पंचायत से होगा जो गांव के वयस्कों द्वारा

जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों सम्मिलित हैं। एक वर्ष के लिये चुने जायेंगे और उनमें निर्धारित योग्यता तो होगी ही। उनके पास सभी शक्तियां और क्षेत्राधिकार होगा। दण्ड की कोई व्यवस्था नहीं होगी अतः पंचायत इस कार्यकाल में व्यवस्थापिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका सभी का कार्य करेगी। गांधी के लिये वे गणराज्य तो तुरंत बन सकते हैं जिसमें वर्तमान सरकार केवल मालगुजारी वसूल करने का कार्य करे और एक मात्र गांव की सरकार पर छोड़ दे।

यह सही प्रजातंत्र है जो व्यक्ति स्वतन्त्रता पर आधारित है। व्यक्ति अपनी सरकार का स्वयं नियोक्ता है। अहिंसा के नियम उसे और उसकी सरकार को नियमित करेंगे। वह और उसका गांव दुनिया की ताकत का प्रतिरोध कर सकेंगे। अपने गांव के गौरव को बनाये रखने के लिये प्रत्येक गांववासी अपने प्राणों की बाजी लगा देगा। ऐसे गांव की आदर्श जनसंख्या क्या हो, गांधी ने लिखा मेरी कल्पना के गांव में वह संख्या 1000 की होगी जो अपना अच्छा उदाहरण प्रस्तुत कर सकती है। संगठित होने के साथ यह आत्मनिर्भर भी होगी।

ग्राम स्वराज्य के लिये गांधी की इस बात का उल्लेख आवश्यक है, जिसमें गांधी ने सबसे पहले स्वतंत्रता नीचे से आरंभ हो, इस पर बल दिया। प्रत्येक गांव एक गणतंत्रात्मक पंचायत होगा जिसके पास सभी शक्तियां होंगी, तथा साथ ही साथ वे स्वावलम्बी भी होंगे, यहां तक कि सारी दुनिया से अपनी रक्षा कर सकें।

ऐसे समाज का आधार गांधी के अनुसार "सत्य और अहिंसा होगा जिसका अर्थ भगवान में आस्था है, इसमें गांवों में अनेक वृत्त होंगे न कि विभिन्न सोपान जहां सर्वोच्च का पोषण निचले स्तर से ही होता है। इस वृत्ताकार व्यवस्था का केंद्र तो व्यक्ति है जो अपने गांव के लिये सब कुछ कर गुजरने के लिये तैयार है। ऐसी स्थिति में, वृत्त में बाहर की सीमा पर बैठक भी वृत्त के केंद्र में व्यक्ति को नष्ट नहीं होने देगा बल्कि वह तो उसे शक्तिशाली ही बनायेगा। इसमें सब धर्मों की स्थिति एक सी होगी। हम सब एक बड़े वृक्ष के पत्ते की तरह हैं जिसकी जमीन में गहरी जड़े हैं और उसे बड़े से बड़ा अंधड़ भी नहीं हिला सकता है।"

पंचायत की स्थापना गांधी के लिये बहुत अधिक महत्वपूर्ण थी। गांधी ने लिखा—"जब पंचायत राज स्थापित हो जायेगा तब जनमत वह कर पायेगा जो कोई भी हिंसा नहीं कर सकेगी। जमींदारों, पूंजीपतियों और राजाओं की ताकत तो तब तक है जब तक सामान्य जन अपनी शक्ति नहीं पहचानते। यदि वे असहयोग करें तो जागीरदारी व्यवस्था और पूंजीवाद तो वैसे ही खत्म हो जायेंगे। उनके अनुसार—"पंचायती राज में पंचायत के कानून ही माने जायेंगे, जो उन्हीं के द्वारा बनाये गये होंगे।"

गांधी के विचारों में ग्राम पंचायत स्वराज्य की कल्पना गांवों की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाओं की पुनः रचना थी। इसमें यदि कोई भी एक पक्ष कमजोर हो या अव्यवस्थित तो वह सारी व्यवस्था को गड़बड़ा देता है। जैसे यदि आर्थिक स्वावलम्बन ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को नहीं मिल पाता है तो व्यवस्था में केन्द्रीकरण के अवसर किसी भी तरह से कम नहीं होंगे। यदि राजनीतिक शक्ति का आधार नैतिक नहीं है, यदि वह सत्य पर, अहिंसा पर आधारित नहीं है तो उसके परिणाम भयावह हैं। वह गांव तक एक ऐसी राजनीति को जन्म देगी जो किसी गांव को कई आधारों पर बांट देगी और उसकी रचनात्मक ऊर्जा समाप्त हो जायेगी।

हमारे विभिन्न राजनीतिक विकल्पों में राजनीति में संचालन के विभिन्न पक्षों और नियमन की सबसे बड़ी समस्या तो यह है कि हम विभिन्न प्रयासों को आर्थिक रूप से ही स्वीकार करते हैं। फिर वह प्रयोग गांधीवादी ग्राम स्वराज्य की पंचायत राज व्यवस्था से ही क्यों न हो, यदि आर्थिक नीतियों का रूप केंद्रीकरण को बढ़ाने वाला, मानव श्रम से अधिक मशीनीकरण पर आधारित है, तो उसकी राजनीति स्वशासी और विकेन्द्रीत नहीं हो सकती है। आर्थिक व्यवस्था में राजनीतिक प्रभाव और राजनीतिक व्यवस्था के आर्थिक अर्थ दोनों को अलग-अलग कर देखना ही कई भ्रान्तियों को जन्म देता है जबकि गांधी सभी प्रश्नों को एक संपूर्णता के साथ देख रहे हों तब उनके सुझाये उपायों को अलग-अलग करके देखना, किसी भी तरह उचित नहीं होगा।

संवैधानिक संशोधन

73वें संवैधानिक संशोधन में पंचायतीराज संस्थाओं को एक संवैधानिक अनिवार्यता का स्वरूप प्रदान किया गया है, जिसका एक अर्थ तो स्पष्ट है कि, राज्य सरकारों की इच्छा और राजनैतिक हस्तक्षेप के अवसर कम हो गये हैं। साथ ही साथ महिलाओं और पिछड़े वर्गों में रक्षण के माध्यम से पंचायतराज व्यवस्थाओं में सामाजिक व्यवस्थाओं के आधार को व्यापक किया गया है। यही नहीं ग्रामीण नियोजन में पंचायतों को स्पष्ट भूमिका प्रदान की गई है, जो इन संस्थाओं के संभावित योगदान और भूमिका को और अधिक स्पष्ट करती है किन्तु अपने आकलन में इस बात को न भूलें कि आर्थिक दृष्टि से पंचायतीराज संस्थाओं को अधिक स्वायत्ताएं नहीं दी गई हैं और न ही अर्थिक संसाधनों के निर्माण में इन संस्थाओं को प्रभावी बनाया गया है। इस पर परिणाम यह तो साफ तौर पर नजर आता है कि यह आर्थिक दृष्टि से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को अधिक शक्ति नहीं देता है। पंचायती राज व्यवस्थाएं ग्रामीण व्यवस्थाओं में राजनीतिकरण का संकेत तो है, किन्तु आर्थिक व्यवस्थाओं की स्वायत्तता के प्रभाव में यह प्रयोग कई सामाजिक तनावों को इस क्षेत्र में जन्म देगी।

पंचायती राज संस्थाओं के विकासक्रम में यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है कि लम्बे समय तक ये व्यवस्थाएं राज्यों की अपनी राजनीतिक आवश्यकताओं से प्रभावित रही है। राज्य सरकारों की राजनीतिक अनिवार्यताओं ने इनके कार्यों और शक्तियों के उचित निर्णय में लगातार बाधाएं उत्पन्न की हैं। विभिन्न राज्यों में राजनैतिक संतुलन ने इसके स्वरूप को गहरे रूप में प्रभावित किया है जिसका परिणाम यह रहा कि यह महत्वपूर्ण प्रयोग प्रभावी स्वरूप ग्रहण नहीं कर पाया। वर्तमान में इस प्रयोग ने एक निश्चित रूप अवश्य ही ग्रहण किया है और इसके सामाजिक आधारों को संवैधानिक स्वीकृति, विशेषकर महिलाओं और पिछड़ों को आरक्षण देकर की गई है, किन्तु इस प्रयोग में पंचायती राज व्यवस्था के आर्थिक संसाधनों की स्वायत्ता पर पूरा विचार नहीं हुआ हैं जो इस प्रयोग की सीमाओं को निर्धारित करता है। आयोजन और आर्थिक संसाधनों में स्वायत्ता इस प्रयोग की अनिवार्यताएं हैं, जिसे किसी न किसी स्तर पर निश्चित करना इस प्रयोग को ताकत देगा। फिर भी संवैधानिक व्यवस्थाओं की स्पष्टता इस प्रयोग को नई शक्ति प्रदान करती है।

ग्रामीण नेतृत्व में इस नये प्रयोग में पंचायत राज के नेतृत्व में अब प्रशिक्षण का प्रश्न महत्वपूर्ण है क्योंकि लम्बे समय तक प्रशासकीय अकुशलता और संकट से कोई भी राजनीतिक व्यवस्था चल नहीं सकती है। पंचायत राज से जुड़े विभिन्न संगठनों में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका विशेष महत्वपूर्ण है जो इन प्रभावों को दूर करने की दिशा में प्रयास कर इस प्रयोग को नयी उर्जा देंगे।

पंचायत राज व्यवस्थाएं : राजस्थान के संदर्भ में

नयी पंचायती राज व्यवस्थाओं के अंतर्गत हाल में राजस्थान में चुनाव संपन्न हुए हैं और इन व्यवस्थाओं को सापित करने का प्रयास किया गया है और साथ ही इस प्रयोग को राजनैतिक संदर्भों में स्पष्ट करने का एक प्रयास किया गया है। वैसे राजनैतिक बदलाव को देखने के इस प्रयोग में व्यापक सामाजिक बदलावों का आकलन भी है जिनसे न केवल समूचे ग्रामीण समाज की संरचना ही बदली है वरन् राजनैतिक व्यवस्थाएं और राजनीतिक दलों की कार्यशैली भी प्रभावित हुई है। राजस्थान का प्रयोग इसलिये भी महत्वपूर्ण है कि यह वह प्रांत रहा है जहां सामंती प्रभाव सबसे अधिक गहरे थे, किन्तु पंचायती राज के आरंभिक प्रयोग यहां हुए हैं और उसी क्रम में बदलाव का अनुभव वहां लगातार हुआ है अब जबकि नये चुनाव हो चुके हैं तब उनके राजनैतिक मंतव्यों का आकलन अनुचित नहीं है।

पंचायती राज चुनाव मूलतः एक बड़ा व्यापक राजनैतिक प्रयास रहा है जहां लम्बे समय से सभी राजनैकि प्रक्रियाओं को अपना रूप लेने का अवसर मिला है। वैसे राजस्थान में हुए इन चुनावों में 2 करोड़ 26 लाख मतदाता थे और इन मतदाताओं ने अच्छी संख्या में मतदान किया। यह बात तो साफ है कि स्थानीय हितों और राजनीति से उनका जुड़ाव सबसे अधिक है। ग्रामीण स्तर पर मतदाता को चुनावों से जुड़ना राजनीतिक रूप से महत्वपूर्ण है।

राजस्थान में इन चुनावों में दो नये आरक्षणों की स्पष्ट

संवैधानिक घोषणा थी। जिला परिषद के प्रमुखों में 10 महिला जिला प्रमुख और 5 पिछड़े वर्गों के लिये पद आरक्षित थे। और परम्परागत अनुसूचित जाति और जनजाति के लिये क्रमशः 6 और 5 पद आरक्षित किये गये थे। जिसका अर्थ यह है कि 31 जिला प्रमुखों में 21 पद विभिन्न वर्गों के लिये आरक्षित हैं। खुली राजनीति के पद घरों के लिये यह व्यवस्था असरों को सीमित करती है। किन्तु इस व्यवस्था के फलस्वरुप उन वर्गों के लिये राजनीतिक अवसर उपलब्ध हैं जो पहले राजनीति से दूर रहते थे।

पंचायत के स्तर पर यदि आरक्षण का आकलन किया जाय तो उसका आभास इस प्रयोग में प्रभावों को स्पष्ट करने में सफल होगा जैसे 9183 में सरपंचों में से 3064 महिला सरपंच, 1007 पिछड़े वर्गों के, 1643 अनुसूचित जाति के और 1477 अनुसूचित जन-जाति के पद आरक्षित किये गये। 3064 महिला सरपंचों की उपस्थिति राजनीति में नए प्रयोग का सूचक है। आरम्भिक वर्षों में यह शिकायत हो सकती है कि उनके स्थान पर उनके परिजन राजनीति कर रहे हैं। वे अपनी दक्षताओं का परिचय नहीं दे पा रही हैं, किन्तु इससे अधिक महत्वपूर्ण तो यह है कि एक वंचित वर्ग जो राजनीति से बहुत समय तक दूर रहा है वह राजनीति से जुड़ रहा है। अधिकारों के प्रयोग उन्हें नया आत्मविश्वास देंगे, और साथ ही साथ राजनीति में नये विकल्पों के लिये अवसर तो होगा ही। इस प्रयोग में अधिक ज्यादा जरूरी है हमारी मानसिक तैयारी, जिसके अन्तर्गत इन राजनीतिक साझेदारी के परिणामों पर अधिक रचनात्मक दृष्टि का परिचय दें तभी इस प्रयोग की अधिक उपयोगिता नजर आयेगी।

वैसे पंचायत स्तर पर यह चाहा गया था कि राजनैतिक दलों को इस प्रतिस्पर्धा से दूर रखा जाय और राजनीतिक दलों से अलग रखकर इस व्यवस्था को बनाया जाय किन्तु लगता यह है कि राजनीतिक दल मतदाताओं से अपने परिचय का इतना बड़ा अवसर हाथ से नहीं जाने देना चाहते और न ही राजनीति करने का इतना बड़ा क्षेत्र छोड़ना चाहते थे। इसलिये जिला परिषद और पंचायत समितियों के चुनाव का आयोजन राजनीति दलों ने दलीय आधारों पर ही किया। सबसे पहले जिला परिषद के विश्लेषण को ही लें जिसमें 997 सदस्यों का चुनाव होना था और विभिन्न दलों में उम्मीदवारों की संख्या थी—भारतीय जनता पार्टी (भा.ज.पा.) 939, कांग्रेस 973, भारतीय साम्यवादी दल 6, भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) 41, जनता दल 145, समता पार्टी 7, और निर्दलीय 1,93 चुनावों में लड़ हे दलीय उम्मीदवारों की संख्या विभिन्न दलों की राजनीतिक हैसियत का आभास देते हैं। इस विश्लेषण में लगता यही है कि प्रान्त में भा.ज.पा. और कांग्रेस राजनीतिक सत्ता के मुख्य दावेदार हैं और अन्य दल जिसमें दोनों साम्यवादी और जनता दल बहुत ही पीछे नजर आते हैं। वैसे निर्दलियों की संख्या काफी नजर आती है, ये दोनों प्रमुख दलों के विद्रोही उम्मीदवारों के कारण और अधिक हो गई है। इसी विश्लेषण को पंचायत समिति के स्तर पर देखा जाय तो स्थितियां और भी अधिक स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आयेगी। पंचायत समितियों के लिये 5,257 स्थानों पर चुनाव होने थे और 21,510 उम्मीदवार चुनाव लड़ रहे थे। विभिन्न दलों के उम्मीदवारों की संख्या थी भा.ज.पा. 4,278, कांग्रेस 4,880, साम्यवादी (मार्क्सवादी) 148, साम्यवादी 35, जनता दल 485, जनता पार्टी 3 और निर्दलीय 11,200 दलों के द्वारा उम्मीदवारों के साथ ही साथ राजस्थान के संदर्भ में निर्दलीय को लेकर एक बात साफ रहे कि प्रांतीय स्तर पर निर्दलीय राजनीति सत्ता में साझेदारी कर रहे हैं। वैसे उनमें से कुछ भा.ज.पा. के साथ मिल गये हैं, किन्तु फिर भी काफी निर्दलीय अपनी अलग राजनीतिक पहचान बनाये हुए हैं और उन्हीं से जुड़े लोग अलग से राजनीति में व्यस्त हैं। राजस्थान के एक बड़े दल जनता दल के बारे में यह कहना गलत हीं होगा कि चुनावी राजनीति में इसका प्रभाव लगातार कम होता जा रहा है और उसके प्रभाव के कुछ क्षेत्र बचे हैं इसलिये उसके उम्मीदवारों की संख्या कम है। साम्यवादी दलों की शक्ति भी सीमित होती जा रही है। इतने बड़े चुनावों में कम संख्या में उम्मीदवारों का मैदान में होना यह बात तो स्पष्ट करता ही है।

राजनैतिक दलों की उपस्थिति के कारण प्रान्तीय स्तर पर एक ऐसी प्रचार नीति का आयोजन किया गया जिसमें बड़े नेताओं के दौरे हों, सभाएं हों और आभास यह रहे कि प्रान्तीय स्तर

पर नहीं वरन् राष्ट्रीय स्तर पर इसका गहरा प्रभाव होगा, किन्तु मतदाताओं को तो यह स्पष्ट था कि ये चुनाव पंचायत के चुनाव हैं और इनमें सारा जोर उनकी स्थानीय समस्याओं पर था और स्थानीय समीकरण ही उसे सबसे अधिक प्रभावित कर रहे थे। प्रान्तीय नेताओं की स्थानीय नाराजगी, उनके व्यवहार के प्रति, उनके प्रभाव को सीमित करते हुए और अन्य विशुद्ध स्थानीय आधारों पर मत दिये गये हैं। ऐसी स्थिति में जब चुनावों का विश्लेषण हो तो उसके प्रभावों को और व्याख्याओं को राष्ट्रीय स्तर पर या प्रान्तीय स्तर पर करके देखना गलत होगा।

चुनावों के परिणाम बहुत ही रोचक हैं और सबको प्रोत्साहित करने वाले हैं तभी तो भा.ज.पा. इस पर प्रसन्न है कि गांवों तक पहुंच गयी है और कांग्रेस को यह खुशी है कि उसे भा.ज.पा. से अधिक स्थान मिले हैं। सबसे पहले जिला परिषद में चुनावों को लिया जाय जिसके 997 स्थानों के लिये भा.ज.पा. को 413 और कांग्रेस को 477, साम्यवादी दल को 4, जनता दल को 16 और निर्दलीयों को 83 स्थान प्राप्त हुए। आरम्भिक स्तर पर यह स्पष्ट था कि 11 स्थानों पर भा.ज.पा. 16 स्थानों पर कांग्रेस और 4 स्थानों पर स्थिति ऐसी है जहां किसी को भी साफतौर पर बहुमत नहीं मिला है। किन्तु जब जिला प्रमुखों के चुनाव हुए तो जो अन्तिम स्थिति उभरकर आयी उसके अनुसार 16 जिला परिषदों पर भा.ज.पा, 14 पर कांग्रेस और 1 पर निर्दलीय का वर्चस्व स्थापित हुआ है। साफ तौर पर राजनीतिक सौदेबाजी का अवसर तो रहा ही है। साफ यह भी हुआ कि राजनैतिक सत्ता को राजनीतिक दल बहुत ज्यादा परहेज की चीज नहीं मानते हैं और व्यवहार में वे उसे प्राप्त करने के लिये कीमत देने के लिये तैयार रहते हैं।

पंचायत समिति के चुनावों के लिये 5,226 स्थानों में चुनावों के परिणाम इस प्रकार रहे भा.ज.पा. 1986 स्थान, कांग्रेस 2,013, साम्यवादी दल 20, जनता दल 93, समाजवादी दल 2 और निर्दलीय 1,088 स्थानों पर सफल हुए। राष्ट्रीय दलों के साथ-साथ इन चुनावों में निर्दलीयों की संख्या काफी अच्छी रही है। 237 पंचायत समितियों में जो स्थिति बनी वह इस प्रकार थी भा.ज.पा. 119, कांग्रेस 85, जनता दल 5 और निर्दलीय 27, इस स्थिति को यदि वास्तविक चुनाव परिणामों से मिलाकर देखें तो वह है भा.ज.पा. 60, कांग्रेस 65, जनता दल 4 और निर्दलीय 108, विभिन्न पंचायत समितियों के प्रधान चुने गये। लगता है कि दोनों प्रमुख दलों के विद्रोह का लाभ निर्दलीयों को मिला है। वैसे भी इनमें वे ही लोग प्रमुख थे जिन्हें पार्टी टिकट नहीं मिला था और अपने राजनीतिक प्रभुत्व को वे छोड़ना नहीं चाहते थे और उनका प्रभुत्व बना रहा। वैसे यह तो लगता रहा कि गांवों में शक्ति राजनीति का प्रवेश तो बहुत ही खुले रूप में हुआ है और दलीय प्रतिबद्धताएं और नियन्त्रण लगभग नहीं के बराबर रहता है। अतः आगे आने वाले राजनीति का रूप भी साफ ही रहेगा।

पंचायत चुनावों में हिंसा का प्रयोग हुआ है। वैसे इतने बड़े चुनावों में 131 से अधिक मतदान केन्द्रों पर फिर से मतदान चौंकाते तो नहीं हैं, क्योंकि अन्य स्थानों पर जो हिंसा है, उसकी तुलना में राजस्थान में हिंसा कम है। यों एक बात यह है कि यह हिंसा उन्हीं स्थानों पर हुई है जहां पहले भी हिंसा होती रही है। इन स्थानों की राजनीति और उसको लेकर विशेष प्रयास ही हिंसा के इन दोषों को सीमित कर सकते हैं, किन्तु उन पर यदि ध्यान नहीं दिया गया तो उनका विस्तार असंभव नहीं है।

इन चुनावों में धन शक्ति का प्रयोग खुलकर नहीं हुआ है, यह कहना सही नहीं होगा क्योंकि पहले चुनावों के आयोजन में और उसके पश्चात् जिला परिषद और पंचायत समिति के चुनावों में धन शक्ति के उपयोग की चर्चाएं हैं और चर्चा भयावह है। क्योंकि चुनावों में इस खर्चे की जो सम्भावित बलि है वह ग्रामीण क्षेत्रों का विकास ही है, जिसके दुरुपयोग में अकसर विकास की गति और विकास में क्षेत्रों को कम करते हैं। यों यह एक अवसर है जहां खर्चीले चुनावों को रोकने का आरम्भ किया जाना चाहिये था, पर ऐसा न होने से जन साधारण का चुनावों से दूर होना एक सम्भावना लगती है।

राजनैतिक व्याख्याकारों के लिये यह एक अच्छा अवसर है जबकि वे राजनीति के सबसे प्रभावी और आरम्भिक स्तर पर इतने बड़े पैमाने पर हुई भर्ती पर ध्यान दें। और कुछ स्पष्ट रूप से नजर आ रहे बदलाव को समझने और उसके अर्थों को

स्पष्ट करने का कार्य करे। वैसे कई बार यह लगता है कि जो राजनीति का संचालन कर रहे हैं वे बदलाव की आहट से ही चौंकते हैं और कोशिश यह करते हैं कि बदलाव यदि आये तब भी अपने परिवार की सीमाओं को न लांघा जाये इसलिये नेतृत्व अपने अपने पुत्र या पुत्रवधुओं तक रहें यह प्रयास तो है, इस प्रयास की अपनी सीमाएं रही हैं क्योंकि कुछ स्थानों पर मतदाताओं ने इस स्थिति को अस्वीकार कर दिया है तो कुछ स्थितियों में उनकी स्वीकृति भी रही है। राजस्थान में यह महज संयोग ही रहा होगा कि कांग्रेस के परिवारवाद को पंचायत चुनावों में मतदाताओं ने अस्वीकार किया है, किन्तु भारतीय जनता दल के परिवारवाद को उन्होंने सहमति दी है, वैसे यह राजनीति के संचालन कर्ताओं को समझ में आना चाहिये कि पारिवारिक सीमाओं के बाहर राजनीति करने से उसकी परिधि व्यापक और परिणाम अधिक लम्बे समय तक चलने वाले होते हैं। जिला परिषद में जो प्रमुख चुने गये हैं वे उनमें अधिकांशतः हारे हुए विधायक या सांसद हैं। यों इस प्रतिस्पर्धा में दोनों ही मुख्य दल रहे हैं। यों जिलों के विकास कार्यों के लिये जिस लम्बे प्रशासकीय अनुभव की आवश्यकता है वे तो यह लोग पार करते हैं, किन्तु राजनीति के लम्बे अनुभव के कारण उनकी सीमाएं भी हैं उन्हीं के साथ दलीय गुटबाजी भी आयेगी। यों इस तरह के प्रयास नेतृत्व को बढ़ाते नहीं हैं।

पंचायत चुनावों के इस दौर से बात यह तो स्पष्ट है कि राजनैतिक सत्ता में सबसे छोटे स्तर पर नये लोगों ने प्रवेश किया है उनके उत्साह और विश्वास में कोई कमी न आये और प्रजातान्त्रिक व्यवस्थाओं के प्रति उनकी आस्था किसी तरह न डगमगाये इसके लिए संस्थागत व्यवस्थाओं के लिये अधिक आग्रह-किया जाना चाहिये। साथ ही साथ उनकी प्रशासनिक क्षमताओं के विस्तार की आवश्यकता अधिक है, क्योंकि यदि ये क्षमताएं सीमित रह गयीं तो ग्रामीण स्तर तक प्रशासन की दक्षता बहुत गहरे से प्रभावित होगी। प्रश्न यह है कि इस कार्य को करने के लिये किस से कहा जाय ? राजनीतिक दल अपनी शक्ति प्रतिस्पर्धाओं में व्यस्त हैं। तब ऐसे समूह जो प्रशासकीय प्रशिक्षण और प्रशासकीय क्षमताओं को बढ़ाने के कार्य में लगे हैं वे ही आगे आयें और इस महत्वपूर्ण कार्य को करने की जिम्मेदारी लें, तभी पंचायती राज का प्रयोग अपने प्रशासकीय दायित्वों को पूरा करने का कार्य कर पायेगा।

पंचायती राज व्यवस्थाओं के नये वैचारिक संदर्भों में परीक्षण इस तथ्य को स्थापित करने में मदद करता है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं के लिये यह आवश्यक है कि वे जन साधारण की साझेदारी विभिन्न राजनैतिक प्रक्रियाओं में बढ़ाने के अवसरों में वृद्धि का कार्य निरन्तर करती रहे क्योंकि इसके माध्यम से राजनीतिक गतिविधियों में जन साधारण की भागीदारी का क्षेत्र व्यापक होता है। यह प्रक्रिया उन संदर्भों में और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है जबकि समाजवादी सोच की उपयोगिता सीमित होने के पश्चात् जन साधारण के राजनैतिक सोच का अवसर और व्यवस्थाओं में लगाव का क्षेत्र कम हो गया है। पंचायती राज व्यवस्था के क्रम में ही यह विचार प्रक्रिया है कि इस राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के विचार का मूल गांधीवादी चिन्तन में है और उसे संवैधानिक प्रक्रियाओं के माध्यम से राजनीतिक स्वरूप प्रदान किया गया है, किन्तु यहां यह विचार आवश्यक है कि आर्थिक विकेन्द्रीकरण और स्वायत्ता के अभाव में यह प्रयोग बहुत अधिक सफल रहेगा। इस पर संदेह है और इन स्थितियों में ग्रामीण नियोजन और विकास प्राथमिकताओं के निर्धारण में गांवों की भूमिका आवश्यक हो जाती है।

वर्तमान में जिस आरक्षण व्यवस्थाओं के अन्तर्गत यह प्रणाली कार्य कर रही है यदि उससे जुड़े लोगों के प्रशासनिक प्रशिक्षण और उनकी प्रशासनिक क्षमताओं को यदि विकसित नहीं किया गया तो इस प्रयोग की सफलता पर लगातार संदेह बना रहेगा। इन क्षमताओं को बढ़ाने के लिये लगातार प्रशासकीय अन्वेषण और प्रशिक्षण की आवश्यकता है, जिनको विकसित करने के नये माध्यमों की खोज आवश्यक है।